**ओ३म्**

**‘संसार के सभी मनुष्यों का धर्म क्या एक नहीं है?’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

संसार में सम्प्रति अनेक मत-मतान्तर फैले हुए हैं जिनकी अनेक मान्यतायें समान, कुछ भिन्न व कुछ एक दूसरे के विपरीत भी हैं। यह सभी मत किसी एक ऐतिहासिक पुरुष द्वारा चलाये गये हैं। यही भी सत्य है कि मनुष्य अल्पज्ञ होता है। यह भी तथ्य है कि सभी मतों के प्रवर्तक वेद ज्ञान से शून्य थे। सब मतों का अपना-अपना एक व एक से अधिक ग्रन्थ हैं जिसे वह धर्म ग्रन्थ कहते हैं और उसकी शिक्षाओं को मानना ही अपना धर्म समझते हैं। यदि सभी मतों की सभी बातें सत्य होती, परस्पर विरोधी न होती, पूर्ण निष्पक्ष होती, तो किसी को कुछ कहने के लिए नहीं था। सभी मतों में प्रायः एक समान्य बात देखने को मिलती है और वह यह है कि वह अपने मतों की समीक्षा, परीक्षा व मूल्याकंन कि वह सभी सत्य हैं तथा उनमें कहीं कोई बात असत्य तो नहीं है, इसका विचार नहीं करते। इनका यह विचार व स्वभाव ज्ञान की उन्नति व विज्ञान के सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत होने से विचारणीय प्रतीत होता है। दूसरी ओर सृष्टि के आरम्भ से चला आ रहा वैदिक धर्म, जिसका आधार ग्रन्थ चार वेद हैं, अपने अनुयायियों को सभी ग्रन्थों के स्वाध्याय, मनन, विचार, चिन्तन, सत्यान्वेषण, सत्य व भद्र के ग्रहण व असत्य-अभद्र के त्याग की पूरी अनुमति व स्वतन्त्रता देता है। इस वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करने वाले महर्षि दयानन्द (1825-1883) सभी सत्य मान्यताओं व उनके आचरण को ही धर्म मानते हैं। उनका कहना है कि सभी मतों में जो सत्य है, वह सबमें एक समान होने से धर्म है और उनमें जो सत्य नहीं है, वह उनका अपना है, वह धर्म नहीं हैं। महर्षि दयानन्द वेदों को ईश्वर प्रदत्त होने से स्वतः प्रमाण मानते हैं और अन्य सभी ऋषियों के रचित शास्त्रों के वेदानुकूल होने पर सत्य व विरुद्ध होने पर संशोधनीय, उसमें सुधार करने वा उन्हें त्याज्य मानते हैं। उनके अनुसार जिस मत में सत्य व असत्य दोनों प्रकार की न्यूनाधिक मान्यतायें व सिद्धान्तों हों, उसे वह मत, सम्प्रदाय, मजहब ही स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में धर्म वह है, जो शत-प्रतिशत सत्यासत्य की दृष्टि से विवेचित, तर्क व युक्तियों से पोषित, समीक्षा किया गया, सृष्टिक्रम के पूर्णरूपेण अनुकूल, मनुष्यों में किसी प्रकार के भेदभाव से रहित, सबकी समानता का पोषक, हिंसा, छल, कपट, प्रलोभन से रहित तथा साथ हि जो विचार व चिन्तन कर असत्य पाये जाने पर उसमें संशोधन की अनुमति देता हो।

 धर्म को समझने के लिए हमें यह जानना है कि संसार में तीन सत्य, नित्य व अनादि पदार्थ है जिनमें एक चेतन ईश्वर है, दूसरा चेतन जीवात्मा व तीसरा जड़ प्रकृति है। इन तीनों में एक हम व संसार के सभी प्राणी चेतन जीवात्मा होते हैं जिनकी संख्या अनन्त हैं। चेतन तत्व में ज्ञान व गति होती है। गति को कर्म के नाम व रूप में भी जान सकते हैं। जीवात्मा का एक गुण व स्वभाव, जन्म व मृत्यु, फिर जन्म और फिर मृत्यु को प्राप्त होना है। यह जन्म व मृत्यु तथा अनेक प्राणी योनि में से एक समय में किसी एक योनि विशेष में इसका जन्म इसके द्वारा पूर्व व वर्तमान मनुष्य योनि में किये गये व किए जाने वाले शुभ व अशुभ कर्मों का परिणाम होता है। परमात्मा का कर्तव्य है कि वह जीव को करणीय व अकरणीय कर्तव्यों का ज्ञान कराये। यह ज्ञान वह सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में चार ऋषियों व अनेक स्त्री-पुरूषों की रचना कर करता है। परमात्मा द्वारा कर्तव्य व अकर्तव्यों का ज्ञान ही **‘‘चार वेद”** अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। यही कारण है कि विगत लगभग 2 अरब वर्षों से यह ज्ञान हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों की कृपा से आज तक मूल रूप में सुरक्षित है। चारों वेदों की भाषा दिव्य संस्कृत है जो ईश्वर व ऋषियों की भाषा है। समय के साथ अनेक उतार चढ़ाव देश व समाज में आये। अतः ऋषियों ने वेदों को समझाने के लिए उसके अंग व उपांग रूप ग्रन्थों की रचना की। इसके बाद भी जब लोगों ने वेद समझने में कठिनाईयों का अनुभव किया तो ईश्वर प्रदत्त क्षमता से ऋषि और वैदिक विद्वानों ने संस्कृत व हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में वेदों का तात्पर्य समझाने के लिए भाष्य व टीकायें लिखी जिसे पढ़कर भी वेदों में निहित मनुष्यों के कर्तव्य व अकर्तव्यों को जाना जा सकता है। वेदों में निर्दिष्ट कर्तव्य ही धर्म कहलाते हैं और निषिद्ध व कर्तव्यों के विपरीत कार्य व क्रियाओं को ही अधर्म कहा जाता है। संसार के मत व सम्प्रदायों की पुस्तकें जिस सीमा तक वेदों के अनुकूल मान्यताओं व सिद्धान्तों से युक्त हैं, वहां तक वह धर्मयुक्त हैं और जो बातें, कहीं की व किसी की भी, वैदिक शिक्षाओं, मान्यताओं व सिद्धान्तों के विपरीत हैं, वह धर्म नहीं हैं और कहीं-कहीं अधर्म भी हैं। धर्म का पालन करने से सभी मनुष्यों की उन्नति होती है, हानि किसी भी मुनष्य या प्राणी की नहीं होती और अधर्म वह है जो अज्ञान के कारण अपने लाभ के लिए किया जाता है जिससे दूसरों को हानि पहुंचने से वह धर्म न होकर अधर्म ही होता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सभी संसार के लोग वेदों की शिक्षाओं को पूर्णतः मानें जो कि सबके लाभ व हित के लिए हैं अथवा वह अपने-अपने मत की पुस्तकों का वेदों से मिलान कर उसे संशोधित व परिष्कृत करें। यह संसार व संसार के सभी मनुष्यों के हित में है। यदि ऐसा करते हैं तो विश्व में प्रेम व भ्रातृभाव में वृद्धि होगी अन्यथा हानि ही होगी व हो रही है।

 धर्म के विषय में यदि हम सामान्य रूप से विचार करें तो धर्म किसी पदार्थ के गुणों को कहते हैं जो सदैव एक समान रहते हैं। अग्नि का गुण जलाना, ताप देना व प्रकाश करना है। साथ ही हम आंखों से जिन आकारवान पदार्थों को देखते हैं वह उनमें अग्नि की उपस्थिति व उसके व्याप्त होने के कारण ही दिखाई देती हैं। यह ताप, जलना, प्रकाश व दर्शन अग्नि का धर्म है। जल का गुण शीतलता देना, मनुष्यों की पिपासा को शान्त करना, अन्न उत्पत्ति में सहायक होना, वर्षा द्वारा स्थान-स्थान पर ओषधियों, अन्न व फलों को उत्पन्न करना व अनेक प्रकार से सभी प्राणियों के लिए उपयोगी होता है। जल का मुख्य गुण शीतलता है। इसी प्रकार से वायु का गुण स्पर्श, पृथिवी का अपना मुख्य गुण गन्ध तथा आकाश का शब्द है। इसी प्रकार से जब जीवात्मा वा मनुष्य की बात करते हैं तो मनुष्य के धर्म में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति को जानना, ईश्वरोपासना करना, यज्ञ करना, माता-पिता-आचार्य- अतिथियों का आदर व सत्कार करना आदि कर्तव्य होते हैं। प्राणी मात्र को प्रेम व मित्र की दृष्टि से देखना और उनके प्रति किसी प्रकार की हिंसा का भाव अपने अन्दर न लाना, वेदों का अध्ययन, गृहस्थ आश्रम के वेद प्रतिपादित कर्तव्यों का पालन, सबसे प्रीतिपूर्वक, यथायोग्य, धर्मानुसार व्यवहार करना ही मनुष्य का धर्म निश्चित होता है। मनुष्य का यह भी कर्तव्य व धर्म है कि स्वयं धर्म को जानकर धर्म को न जानने वाले व विपरीत आचरण करने वालों को यथायोग्य व्यवहार और साम, दाम, दण्ड व भेद की सहायता से उन्हें धर्म का ज्ञान व पालन करना सिखाये। धर्म में हिंसा, अत्याचार, बल प्रयोग, छल, कपट, प्रलोभन आदि का व्यवहार करना अनुचित होता है। जो भी व्यक्ति इनको करता है वह धार्मिक कदापि नहीं हो सकता। इससे यह भी ज्ञात होता है कि संसार के सभी मनुष्यों का धर्म केवल और केवल एक ही है। जिस मत में सब सत्य गुणों का समावेश हो वह धर्म और जिसमें असत्य व दूसरों के प्रति अनुचित व्यवहार व ज्ञान पूर्वक कर्मों का अभाव व न्यूनता हो वह धर्म न होकर मत, पन्थ व सम्प्रदाय की श्रेणी में ही होते हैं। इस दृष्टि से संसार में धर्म तो एक ही सत्याचरण है। यह धर्म वैदिक धर्म है। यदि कोई अपने आप को वैदिक धर्मी कहे और आचरण वेदों के विरुद्ध करे तो वह वैदिक धर्मी होकर भी आचरण की दृष्टि से धार्मिक न होकर उस सीमा तक अधार्मिक ही होता है जिस सीमा तक उसका व्यवहार वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों के विपरीत होता है।

 धर्म का एक आवश्यक अंग ईश्वरोपासना है। ईश्वरोपासना क्या है? यह मनुष्यों द्वारा ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप व गुण-कर्म-स्वभाव को जानकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, ईश्वर का ध्यान, दुष्ट व बुरे कर्मों का त्याग व सत्याचरण का ग्रहण, प्राणिमात्र पर दया व परोपकार आदि को कहते हैं। इस प्रकार के कर्म व पुरुषार्थ करके अपने सभी शुभकर्मों को ईश्वर को समर्पित करना और ईश्वर का ध्यान व चिन्तन कर स्वयं को अहंकार शून्य करना ही ईश्वरोपासना है और सभी मनुष्यों का धर्म है। ईश्वर को जान लेने और उपासना करने से ईश्वर से हमें प्रारब्ध और पुरुषार्थ के अनुसार सुख व दुःख आदि मिलते ही हैं, उपसना का अतिरिक्त फल भी प्राप्त होता है। महर्षि दयानन्द ने बताया है कि ईश्वर की उपासना का अतिरिक्त फल यह मिलता है कि जिस प्रकार अग्नि के पास जाने से शीत निवृत हो जाता है उसी प्रकार ईश्वर का ध्यान व उपासना करने से जीवात्मा के सभी अभद्र गुण-कर्म-स्वभाव दूर होकर, ईश्वर के अनुरुप भद्र होते जाते हैं। इतना ही नहीं, आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि मृत्यु के समान बड़े से बड़ा दुःख प्राप्त होने पर भी मनुष्य घबराता नहीं है और उसे सहन कर लेता है। यह छोटी बात नहीं है। अन्य किसी प्रकार से यह आत्मिक बल प्राप्त नहीं होता, अतः सभी को अष्टांग योग की विधि से ईश्वर की सत्य व शुभ परिणामदायक उपासना अवश्य करनी चाहिये।

 सृष्टि उत्पत्ति के कुछ समय बाद मनुष्यों को नियम में रखने के लिए एक राजा, राज परिषद व राज नियमों की आवश्यकता हुई थी। यह कार्य वेदों के ऋषि महर्षि मनु ने किया था और संसार को एक अद्वितीय ग्रन्थ **‘‘मनुस्मृति”** दिया। अपने आरम्भ काल से लेकर महाभारत व उसके बाद की कई शताब्दियों तक मनुस्मृति अपने शुद्ध स्वरुप में विद्यमान रही। उसके बाद उत्पन्न अनेक सम्प्रदायों के लोगों ने इसमें अपनी-अपनी अशुद्ध व वेद विरुद्ध मान्यताओं के श्लोक बनाकर मिला दिये। इस प्रकार मनुस्मृति अनेक प्रक्षेपों से युक्त हो गई। इस मनुस्मृति में धर्म के लक्षण विषयक एक मूल श्लोक है जिसमें उन्होंने कहा है कि धर्म के दश प्रमुख लक्षण धृति अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, सदबुद्धि, विद्या, सत्य व अक्रोध हैं। जिस मनुष्य में यह लक्षण हों वही धार्मिक होता है। धर्म के यह दश लक्षण सभी मनुष्यों में कुछ-कुछ पाये जाते हैं, किसी में कुछ कम व किसी में कुछ अधिक, परन्तु धर्म के दसों लक्षणों से पूर्णतया युक्त व उसके विपरीत गुणों व लक्षणों से सर्वथा रहित मनुष्यों का मिलता दूभर है। **हमें मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम, योगेश्वर श्री कृष्ण और महर्षि दयानन्द आदि में यह लक्षण पूर्ण रुप से विद्यमान दिखाई देते हैं।** यह तीनों महात्मा वस्तुतः पूर्ण धार्मिक थे। इनके बाद इतिहास में इनके समान इन दस लक्षणों से युक्त व इनका सर्वात्मा प्रचार करने वाला मनुष्य वा महापुरुष हमें दृष्टिगोचर नहीं होता। यह धर्म के लक्षण भी सार्वभौमिक एवं सार्वजनीन है। इनसे भी मनुष्यों का एक धर्म होना सिद्ध होता है। इन लक्षणों को मानने वाले सभी मनुष्य वैदिक धर्मी वा मनु-मत के अनुयायी ही सिद्ध होते हैं जिसमें संसार के सभी मनुष्य आ जाते हैं। इन लक्षणों के अनुरुप जीवन के निर्माण के लिए वैदिक शिक्षा पूर्ण सहायक है। वर्तमान की स्कूली शिक्षा में इन धार्मिक लक्षणों के अनुरुप शिक्षा न होने के कारण वास्तविक धर्म हमारे जीवन में न्यूनतम हो गया है।

 संसार में जितनी भी मनुष्यों की भौगोलिकि दृष्टि से जातियां, मत व सम्प्रदाय हैं उसके सभी मनुष्यों को सुख समान रूप से प्रिय लगते हैं व दुःख सबको समान रुप से सताते हैं। ऐसा कोई नहीं कि भारत में किसी को सुई चुभायें तो उसे दुःख होता हो और यूरोप व अन्य किसी देश-प्रदेश में ऐसा ही किया जाये तो वहां सुख होता हो। इससे तो यही सिद्ध हो रहा है कि संसार के सभी मनुष्यों के गुण-कर्म-स्वभाव, कर्तव्य व धर्म एक ही वा एक प्रकार के हैं। सत्य बोलना, सत्य का आचरण करना, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का भाव रखना और बड़ों का आदर सभी मतों में एक समान हैं। यदि सभी धर्मों व मतों की मौलिक शिक्षायें एक ही प्रकार की हैं, तो यह सभी मनुष्यों का एक धर्म होने का संकेत कर रही हैं। संसार के सभी मनुष्यों को उनके एक समान धर्म के अधिकार से वंचित किया जाना उनके प्रति व मानवता के प्रति न्याय नहीं है। हम सभी मत व सम्प्रदायों के आचार्यों से यह कहना चाहते हैं कि वह स्वयं से ही प्रश्न करें कि क्या संसार के लोगों के धर्म व मत अलग-अलग मानना उचित है? हमें लगता है कि उत्तर नहीं में मिलेगा। यह बात इससे भी सिद्ध है कि कुछ मतों के लोग दूसरे मतों व धर्मों के लोगों का लोभ, बल प्रयोग, छल-कपट व हिंसा आदि से धर्म-परिवर्तन करते हैं। इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से भरा पड़ा है। यदि एक व्यक्ति का एक व अधिक बार अन्य अन्य मतों में धर्म परिवर्तन हो सकता है तो यह सम्प्रदाय परिवर्तन ही कहा जा सकता है, धर्म परिवर्तन नहीं। इस धर्म परिवर्तन से उस व्यक्ति में गुणों व लक्षणों की दृष्टि कुछ मौलिक परिवर्तन होता हुआ देखा नहीं जाता। जैसा वह पहले होता है, वैसा ही बाद में भी रहता है। हां, उसके कपड़े, रहन-सहन के तरीके व पूजा पद्धति में किंचित बदलाव होता है परन्तु उसके सुख-दुःखों में कोई अन्तर आता हो, इसका पता नहीं चलता। सुख में वृद्धि तो सत्याचरण व ईश्वर के निकट जाने से ही मिलती है और उस ईश्वर से दूरी होने पर दुःख, अवनति व विनाश ही होता है। हमारा विनम्र निवेदन है कि सभी मतों व धर्मों के लोग सच्चे मन से विचार करें कि क्या सभी मनुष्यों का धर्म एक ही है या नहीं? अगर किसी से कोई नई बात पता चलती है, तो हम अनुग्रहीत होंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**